IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सन्त कबीर के काव्य में जीव जगत सम्बन्धी चिन्तन

सुगन्धा झा

विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग

बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय

मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत।

कबीर के जीव और जगत सम्बन्धी विचार :–

कबीर मानते हैं कि यह जगत ईश्वर की इच्छा का परिणाम है। रमैनी में उन्होंने संसार के आरंभ का विवरण देते हुए कहा है कि– सर्वप्रथम इच्छा से ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शक्ति पैदा हुए थे। इन लोगों ने अपने को जीव मानकर भक्ति की। इनके बाद पवन, जल, तेज और आकाश नामक तत्व पैदा हुए। इसके बाद ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। इससे पृथ्वी उत्पन्न हुई, इसमें नौ खण्ड हुए। उसके बाद पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के जीवधारी पैदा हुए।

प्रगटे ब्रह्मा विष्णु सिव शक्ति,
प्रथमहि भक्ति कीन्ह जिउ उक्ती।
प्रगटे पवन पानी और छाया,
बहु विस्तार कै प्रगटी माया।
प्रगटे अण्ड पिण्ड ब्रह्माण्डा,
प्रिथिभी प्रगट कीन्ह नौ खण्डा।
प्रगटे सिध साधक सन्यायी,
ई सब लागी रहे अविनासी।।

परमात्मा कुम्भकार के समान होता है। लेकिन अन्तर यह होता है कि कुम्भकार को समान बनाने के लिए मिट्टी बाहर से लेना पड़ता है, परन्तु परमात्मा रूपी कुम्हार को सामग्री बाहर से नहीं लेनी पड़ती है। कबीर के अनुसार जिसने नाम, रूप, जीव–जगत की सृष्टि की है वही सच्चा सूत्रधार है, वही सबको कठपुतली की तरह नचाता रहता है।

जिन यह चित्र बनाइया, साँचा ओ सुतधारी।
कहहिं कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहि त्रेहिं विचारी।।[2]

कबीर दास ने पेड़ के स्वरूप द्वारा भी विश्व के स्वरूप का वर्णन किया है। कबीर के शब्दों में यह जगत ऐसा वृक्ष है जो बिना मूल के स्थित है। उसमें बिना फूल के फल लगते हैं।

तरवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूलां फल लगाा।
साखा पत्र कछु नहिं बाकैं, अष्ट गगनमुख बागा।।[3]

यहाँ वृक्ष का तात्पर्य प्रकृति से है। क्योंकि प्रकृति का कोई मूल आधार नहीं है। यह अपने आप में सभी का मूल या आधार है। 'सांख्य दर्शन में भी प्रकृति को मूल आधार कहा गया है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी वृक्ष के यपक द्वारा विश्व की स्थिति को बताया गया है –

ऊर्ध्वमूलगधः सारवमश्वत्यं प्राहुरण्ययम्। छन्दासि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।1।
अधश्चोर्ध्व प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रकृद्रा विषयप्रवालाः। अध्श्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबान्धीनि मनुष्यलोके।।2।।

(अध्याय 15)

सांख्यवासियों की तरह कबीर प्रकृति को स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते हैं। कबीर का मानना है कि संसार की रचना परम चैतन्य से होती है, उन्हीं में उसकी स्थिति है और उन्हीं में उसका विलय हो जाता है। यही पूर्ण अद्वैतवाद है –

पंच तत अविगत तैं अतपना एकै किया निवासा। बिछुरे तत फिरि सहजि समाना
रेख रहीं नहि आसा।।[4]

सामान्यतः जीव भी निरन्तर चलने वाली सत्ता है। यह भी परमात्मा का ही अंश है। जीव ब्रह्म से पैदा होता है। उसी में निवास अथवा रहता है और अंत में उसी में जीव का विलय हो जाता है। कबीर का विचार है कि– जिस प्रकार घड़े के फूट जाने पर उसका जल, जल में ही समा जाता है, उसी प्रकार स्थूल–सूक्ष्म आदि उपाधियों के सर्वथा नष्ट हो जाने पर अन्तरात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है –

ज्यौं विवहि प्रतिबिंब समाना उदकि कुभ्भ विगराना। कहै कबीर जानि भ्रम भागा
तनु मन सुन्नि समाना।।[5]

कबीर ने यहाँ पर वेदान्त के दो प्रसिद्ध दृष्टान्तों के आधार पर आत्मा और परमात्मा की एकता को स्थित किया है। एक दृष्टान्त को 'प्रतिबिम्बवाद' कहते हैं। जिसमें परामात्मा बिम्ब माना गया है और आत्मा प्रतिबिम्ब। दूसरे दृष्टान्त को 'अवच्छेदवाद' कहते हैं। इसमें सभी उपाधियों के नष्ट होने पर आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। इस प्रकार जीव परामात्मा ही है। सृष्टि के बाद जीव परामात्मा से अगल हो जाता है। जब जीव माया के वश में होकर सांसारिक चीजों में लीन हो जाता है तब आत्मा स्वरूप को भूल जाता है। परिणाम ये होता है कि इस

शरीर रूपी वृक्ष पर स्थित परमात्मा और जीवात्मा रूपी दो पक्षियों की जोड़ी बिछुड़ जाती है और वह बगुला रूपी माया तथा पाखण्डी जीवों के संगत में पड़ जाता है –

पाइं पदारथ पेलि करि, कंकर लीन्हा हाथि।
जोरी बिछुरी हंस की, पड़े बगा कै साथि।।1।।

(अपरिष को अंग)

उपनिषदों में इसका उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। कबीर ने इसका उल्लेख कमलिनी के प्रतीक द्वारा स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि कमलिनी के नाम का मूल सरोवर में रहता है जहाँ से उसे हमेशा तरलता मिलती रहती है। उसकी उत्पत्ति सरोवर से होती है तथा उसके जल में ही उसका निवास रहता है। न तो उसके तल में ताप है और न ऊपर आग है। फिर उसके कुम्हलाने का क्या कारण हो सकता है? इसका कारण यह है कि उसका स्नेह उस मूल स्रोत से नहीं है, जो जीवन का आधार है। वह किसी दूसरे में अनुरक्त है। इसी प्रकार जीव का मूल परमात्मा है, जो सच्चिदानन्द है। जीव उसके पास न होकर सांसारिक चीजों में अनुरक्त रहता है। यही उसकी म्लानता का कारण है –

काहे री नलिनी तूँ कुम्हिलानी तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल में उत्पत्ति जल मैं वास, जल में नलिनी तोर निवास
ना तल तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कासनि लाग।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मुस हमारे जान।

(पद 83)

तैत्तरीय उपनिषद में भी कहा गया है कि आनन्द ब्रह्म है। आनन्द से सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं। आनन्द के माध्यम से जीवित रहते हैं। आनन्द की ओर ही सब प्राणी जाते हैं और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं।[6] इसका एकमात्र उपाय है – प्रभु की भक्ति।

संदर्भ :

1- रमैनी, 3
2- रमैनी, 27
3- कबीर ग्रन्थावली, पद–37
4- कबीर ग्रन्थावली, पद–9
5- कबीर ग्रन्थावली, पद–153
6- आनन्दो ब्रह्मनेति व्याजानादान्दाद्वि खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्त्यानन्द प्रयत्त्यभिसंविशन्ति।। (3/6/1)